शिक्षा को दिलचस्प बनाने का एक जतन

के.आर. शर्मा

दक्षिणी गुजरात की चुनी हुई आश्रमशालाओं में काम करते हुए मुझे यह महसूस हुआ कि अगर बच्चों को सीखने के अवसर उपलब्ध करा सकें तो हम बहुत हद तक कामयाबी हासिल कर सकेंगे। स्कूलों को सीखने का मंच बना सकें तो यह एक सार्थक कदम होगा।

आश्रमशालाओं की अवधारणा यह है कि बच्चे और शिक्षक आश्रमशाला में ही रहते हैं। मैं गुजरात के वलसाड ज़िले के धरमपुर तहसील क्षेत्र की बात कर रहा हूँ। यहाँ आदिवासी निवास करते हैं। यहाँ प्रमुखतः जितने घने जंगल हैं उतनी ही गरीबी भी। वैसे यह क्षेत्र कुदरती संसाधनों से लबरेज़ है। भरपूर बरसात, नदी-नाले, जंगल, जीव-जन्तु तथा मिट्टी-पत्थर, चट्टानें...! मगर स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधाएँ अभी भी पहुँच से दूर हैं। कई आश्रमशालाओं में बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं हैं।

आश्रमशाला के ढाँचे की नींव गांधीजी की बुनियादी शिक्षा के आधार पर रखी गई थी। गांधीजी तो लोगों को याद हैं मगर उनकी शिक्षा हाशिए पर चली गई है। बुनियादी शिक्षा में मातृभाषा में शिक्षा, उत्पादक कार्य केन्द्रित शिक्षा और स्थानीय परिवेश को आधार बनाकर शिक्षा की कल्पना की गई है। परन्तु आश्रमशालाओं में परम्परागत रटन्त विद्या और परीक्षा का आतंक गहराई तक पैठा है।

आम तौर पर शिक्षकों का मानना है कि चूँकि वे जंगली और आदिवासी इलाके में रह रहे हैं इसलिए बच्चों को पढ़ाने के लिए साधन-सामग्री का अभाव है। उन्हें लगता है कि बड़े शहरों में साधन-सामग्री कहीं ज़्यादा होती है। उनके लिए भी रंग-बिरंगे चार्ट्स और थर्मोकॉल से निर्मित चीज़ें टीएलएम का पर्याय बन चुकी हैं।

देखा गया है कि यह टीएलएम बच्चों के हाथों से दूर ही रहता है।

टीएलएम के नाम पर बनाए गए मॉडल बच्चों से नहीं जुड़ पाते हैं। टीएलएम की सार्थकता इसमें ही है कि वह ऐसी सामग्री हो जो बच्चे और उसके स्थानीय परिवेश पर केन्द्रित हो। इसलिए तय किया गया कि जो भी सामग्री यहाँ मिलेगी उसका इस्तेमाल टीएलएम के रूप में किया जाएगा। साथ ही यह भी तय किया गया कि उसे बच्चे खुद बनाएँगे और वह उनकी पहुँच में रहेगा। टीएलएम ऐसे होंगे जिनमें बच्चा अपनी मर्ज़ी से बदलाव कर सकता है, तोड़-मरोड़ कर सकता है। हालाँकि विज्ञान, भूगोल आदि में इस्तेमाल होने वाली सामग्री शहरों या साइंटिफिक स्टोर्स से खरीदनी होगी, मगर आधारभूत सामग्री की व्यवस्था स्थानीय स्तर पर ही की जाएगी।

इस आदिवासी इलाके में निवास करने वाले लोग कूंकणा बोली में बोलते हैं। यह इलाका महाराष्ट्र से लगा हुआ है इसलिए यहाँ की बोलचाल की भाषा गुजराती और मराठी का मिला-जुला रूप है। लेकिन स्कूल और दफ्तर की औपचारिक भाषा गुजराती है, लिपि भी गुजराती है। पाठ्य पुस्तकें भी गुजराती में ही हैं। इस इलाके में काम करते हुए मुझे इस बात का अहसास हुआ कि बच्चों से संवाद स्थापित करने के लिए उनकी अपनी भाषा कूंकणा को अपनाना होगा। यह भी समझ आया कि यहाँ के परिवेश को ध्यान में रखकर ही शैक्षणिक कार्यक्रमों का ताना-बाना बुनना होगा। इन सब बातों को ध्यान में रखकर हमने कुछ प्रयास किए जिसका ब्यौरा यहाँ प्रस्तुत है।

पाठ्य पुस्तकें बनाम कक्षा पुस्तकालय

आम तौर पर इस बात का रोना काफी रोया जाता है कि बच्चों को पढ़ना नहीं आता। और अगर पढ़ लेते हैं तो समझ नहीं पाते। इसका दोष भी उन बच्चों पर ही मढ़ा जाता है। अमूमन यह समस्या हर कहीं है।

यहाँ के बच्चों की पारिवारिक और सामाजिक पृष्ठभूमि ऐसी नहीं कि उनके घर में अखबार-पत्रिकाएँ मौजूद हों या कोई और छपी हुई सामग्री हो। और स्कूलों में तो बच्चों को शुरू से ही अर्थरहित अक्षर, शब्द और उनके हिज्जे रटने को मजबूर किया जाता है। बच्चों को घर से स्कूल तक हर कहीं झिड़कियाँ और डाँट सुनने को मिलती हैं। पढ़ना सीखने की यह प्रक्रिया न केवल जटिल व उबाऊ है बल्कि यह बच्चों की अस्मिता और स्वाभिमान को ठेस पहुँचाती है।

असल बात तो यह है कि बच्चा जब बोलना शुरू करता है तो वह अक्षर नहीं बोलता। वह अर्थपूर्ण शब्द और वाक्य बोलता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कक्षा पुस्तकालय की नींव रखी गई। इसमें पाठ्य पुस्तक के अलावा दीगर किताबें और पत्रिकाएँ व अखबार उपलब्ध कराए गए। बच्चों को कक्षा में ही उनकी दिलचस्पी की किताबें दी गईं। ऐसा माहौल बनाया गया कि जो बच्चे स्कूल में भर्ती हों उनके साथ शिक्षक खूब बातें करें, उनके अनुभव व किस्से-कहानियाँ सुनें और उनको सुनाएँ, उनकी मन की बातें सुनें।

लवकर आश्रमशाला के बच्चों द्वारा बनाया गया चित्र

हमने छोटे बच्चों के लिए रंग-बिरंगी और उनकी सोच व सन्दर्भ से जुड़ी किताबों का चयन किया। किताबों के चुनाव

बच्चा कोरी स्लेट नहीं होता...

एक बैठक में शिक्षकों से इस बात पर चर्चा की गई कि जो बच्चा पहली दफे स्कूल में कदम रखता है उसे क्या-क्या आता है। आम तौर पर बच्चों को कोरी स्लेट समझा जाता है।

चर्चा में यह बात उभरी कि बच्चे के पास अपनी भाषा होती है जिसमें वे बढ़िया तरीके से संवाद करते हैं। उन्हें गिनती आती है। कुछ बच्चों को तो बीस तक की गिनती आती है। वे अपने आस-पास के लगभग सभी पालतू पशु, पेड़-पौधे, चिड़ियाँ, नदी-नाले, खेत, रिश्ते-नाते आदि के बारे में काफी कुछ जानते हैं।

बच्चे अपने घर या स्कूल में जब कक्षा के बाहर खेल रहे होते हैं या कोई काम कर रहे होते हैं तो ज़्यादा स्वतंत्र और खुश नज़र आते हैं। ऐसे माहौल में अगर उन्हें कोई काम दिया जाए तो वे उसे दिलचस्पी से करते हैं। मगर कक्षा में पढ़ने-लिखने के काम में वे अक्सर घबरा जाते हैं। सवाल यह उठता है कि क्या कक्षा का वातावरण बच्चों के लिए डरावना और उबाऊ होता है? ऊपर से शायद परीक्षा बच्चों की सीखने की क्षमता की कमर तोड़ देती है।

यहाँ जो कुछ कहा जा रहा है वह कोई नई बात नहीं मगर हमारे यहाँ शिक्षक साथियों को इस चर्चा से आगे काम करने का एक रास्ता मिल गया।

में ध्यान रखा कि तुकबन्दी वाली भाषा हो और चित्र ऐसे जो उनके आस-पास की दुनिया से जुड़े हों।

कक्षा पुस्तकालय में तय किया कि बच्चे किताबें उलटे-पलटेंगे यानी किताब उनके हाथ में होगी। अगर पुस्तकें कम पड़ें तो दो बच्चों के बीच एक किताब होगी। इस बात की जल्दबाज़ी नहीं की जाएगी कि वे तुरन्त ही पढ़ना शुरू कर दें। अगर वे इन किताबों के केवल पन्ने पलटें तो पलटने दें। यह भी तय किया गया कि अगर किताब फट जाए या गुम हो जाए तो बच्चों के साथ डाँट-डपट न हो।

रूसी-पूसीः एक किताब के कुछ दिलचस्प अनुभव

बहुत सालों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही संस्था एकलव्य ने कुछ रूसी चित्र कथाओं को हिन्दी तथा अँग्रेज़ी में पुनः प्रकाशित किया है। ये बच्चों के बीच बहुत लोकप्रिय हैं। इनके द्विभाषी संस्करण भी प्रकाशित किए गए हैं। इसी क्रम में इनमें से एक पुस्तक 'रूसी और पूसी' का पिटारा धरमपुर ने गुजराती में अनुवाद किया है। 'रूसी और पूसी' गुजराती-अँग्रेज़ी संस्करण की किताब प्रत्येक बच्चे को उपलब्ध हो सके, ऐसी व्यवस्था की

गई। शिक्षक साथियों के साथ एक कार्यशाला का आयोजन किया गया कि रूसी-पूसी का इस्तेमाल कक्षा शिक्षण में कैसे किया जाए। कार्यशाला में ज़ोर इस बात पर रहा कि हम यह समझने की कोशिश करें कि बच्चे किताब का इस्तेमाल किस तरह से करते हैं।

तीसरी कक्षा के एक बच्चे के हाथ में किताब है। वह किताब को उलट-पलटकर देख रहा है। शुरुआत में उसने किताब को उल्टा पकड़ा था। मगर उसने कवर को देखा और (शायद बिल्ली को देखकर) किताब को सीधा कर लिया। अब वह कुछ देर बिल्ली को देखता रहा। पूछने पर बताया, "आ तो बिलाड़ी नी चोपड़ी छे।" शिक्षक ने कहा, "इस किताब का नाम है रूसी-पूसी।" इस बार बच्चे के चेहरे पर हँसी थी और वह कह रहा था, "रूसी... पूसी... रूसी...।" उसको किताब का नाम पुकारने में ही मज़ा आ रहा था।

अब तक बच्चे ने अन्दर के पन्नों पर भी नज़र डाल ली थी। उसने कवर पर बने चूहों और फूलों को गिन डाला था। बच्चे से पूछा, "ये पेड़ किसका है?" इस पर उसने कहा, "बोर।" अन्दर इसी पेड़ को अँग्रेज़ी में एपल और गुजराती में सफरजन कहा गया है। मगर बच्चे को इसके लिए टोका नहीं गया। जब शिक्षिका के द्वारा अन्दर का पाठ्य पढ़ा जा रहा था तो बच्चों ने सहज ही उसे सफरजन यानी कि सेब के रूप में स्वीकार कर लिया।

जब बच्चे ने पन्ना खोला तो उससे पूछा गया कि रूसी कौन और पूसी कौन? तो बच्चे ने बेझिझक जवाब दे दिया। हालाँकि, यहाँ भी वह गलती कर रहा था, रूसी को पूसी और पूसी को रूसी कह रहा था।

अब बच्चा अपने दोस्त के साथ बैठ गया था। वे दोनों उस किताब के पन्ने दर पन्ने पलट रहे थे। पहले पन्ने पर ही लड़की के कन्धे पर बैठी

बिल्ली को देखकर दोनों हँसने लगे। बच्चे ने किताब को अपने कन्धे पर उसी तरह से रखा मानो कि बिल्ली को बिठाया हो। इन दोनों बच्चों को पढ़ना तो नहीं आता मगर उसमें दिए गए चित्रों के आधार पर दोनों आपस में बातें कर रहे थे।

इसके बाद शिक्षिका और बच्चे एक गोल घेरे में बैठ गए। सभी बच्चों के हाथों में किताब थी। शिक्षिका अब हाव-भाव के साथ कहानी पढ़ रही थी। बच्चे चित्र और पाठ्य में सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे।

शिक्षिका ने पूछा, "रूसी कौन और पूसी कौन?" इस बार किसी ने गलती नहीं की। शिक्षिका पढ़ती जा रही थी और बच्चे किताब में एक-एक लाईन पर उंगली घुमाते हुए आगे की ओर बढ़ रहे थे। बच्चे अब रूसी और पूसी के साथ हो लिए थे। जब हम मिलकर गाना गाते हैं तो जिन्हें गाने के बोल और लय नहीं आती वे भी अपने आप ही गाने में शामिल हो जाते हैं। यहाँ भी कुछ ऐसा ही हो रहा था। रूसी-पूसी कहानी की लय को बच्चों ने पकड़ लिया था। बच्चों के चेहरों पर मुस्कान थी। कहानी में कल्पनाशीलता की भरमार है और इसी का लुत्फ बच्चे उठा रहे थे।

इस किताब का इस्तेमाल कुछ बड़े बच्चों के बीच अँग्रेज़ी सिखाने में किया गया। कक्षा पाँचवीं और आगे की कक्षाओं के बच्चों को यह किताब दी गई। उनसे कहा गया कि वे पहले गुजराती में पढ़ें। बच्चों ने एक साँस में किताब पढ़ ली। मगर जब वे गुजराती में पढ़ रहे थे तो उनकी नज़र अँग्रेज़ी के पाठ्य पर भी जा रही थी। जब वे अँग्रेज़ी में पढ़ने लगे तो उनको दिक्कत आई। इसका समाधान उन्होंने ही निकाल लिया। वे एक लाईन गुजराती की पढ़ते और बाद में उसी लाईन को अँग्रेज़ी में। इस तरह से वे गुजराती शब्दों के अँग्रेज़ी अर्थ समझते जा रहे थे। या जब वे अँग्रेज़ी में पढ़ते और जहाँ भी समझने में अटकते तो गुजराती की लाईन देख लेते।

एक और महत्वपूर्ण बात समझ में आई। हर बच्चे का इस किताब को लेकर अलग-अलग नज़रिया था। कोई इस कहानी में एक-एक करके घर और बगीचे में बढ़ती जा रही चीज़ों के बारे में अनुमान लगा रहा था, तो कोई रूसी और पूसी के बीच के व्यवहार को समझ रहा था। कहाँ पर पूसी गुस्सा हो रही है, मुँह बना रही है इसकी नकल वे खुद-ब-खुद कर रहे थे।

बच्चों ने बच्चों के लिए लिखा

अक्सर बच्चों के बारे में कहा जाता है कि वे ठीक से लिख नहीं पाते हैं। चूँकि बच्चों को ज़्यादातर रटा-रटाया लिखना होता है इसलिए उन्हें काफी दिक्कत होती है। इस प्रक्रिया में लिखने के प्रति उनका आत्मविश्वास एकदम काफूर हो जाता है।

आश्रमशाला के बच्चों से कहा गया कि वे ऐसी कहानियाँ लिखें जो उन्होंने अपने दादा-दादी, नाना-नानी, माँ-पिताजी से सुनी हों। उन्हें छूट दी गई कि वे अपने शब्दों में, अपनी भाषा में लिखें। बच्चों ने यह सुना तो उनके चेहरों पर खुशियाँ दौड़ गईं। कुछ ही दिनों में बच्चों के हाथों में उनके द्वारा लिखी गई कहानियाँ थीं। जिन बच्चों ने कहानियाँ लिखी थीं उनके साथ बातचीत की गई। बच्चों ने उन कहानियों को सुनाया। जब वे कहानियाँ सुना रहे थे तो स्पष्ट झलक रहा था कि उनका हौसला बुलन्द है।

इसके बाद अगला कदम था - बच्चों की लिखी गई कहानियों के संकलन का प्रकाशन। कूंकणा बोली में संकलित पुस्तिका के चित्र भी लवकर आश्रमशाला के बच्चों ने ही बनाए।

काग-भगौड़ा बना हीरो

अक्सर हमारी भाषा की कक्षाएँ काफी रूखी होती हैं। ज़्यादा-से-ज़्यादा इतना ही होता है कि किसी कविता या कहानी को हाव-भाव के साथ प्रस्तुत किया जाए। यहाँ चौथी कक्षा में बच्चों और शिक्षकों ने एक मज़ेदार गतिविधि की। भाषा की किताब में काग-भगौड़ा पर एक कविता दी गई है। इस कविता के शिक्षण के लिए शिक्षक लक्ष्मण चौधरी ने एक नायाब तरीका खोज निकाला।

शिक्षक ने बच्चों के साथ मिलकर योजना बनाई कि वे आश्रमशाला के बैंगन के खेत में एक काग-भगौड़ा बनाएँ। बस फिर क्या था, काग-भगौड़ा बनाने के लिए तमाम सामग्री एकत्र की जाने लगी। उपयोग की गई एक मटकी कहीं से मिल गई। कुछ पुराने कपड़े और लकड़ियाँ लाई गईं। इन

चाड़िया

मारा खेतरमां उभो एक चाड़ियो[1] रे लोल,
कशु खातो नथी तोय जाड़ियो[2] रे लोल,
एकलो उभो रही, कईं नथी बोलतो,
वायरानी[3] संगाथे, धीमे-धीमे डोलतो।
करे माथा पर काव, काव हाडियो[4] रे लोल,
मारा खेतरमां उभो एक चाड़ियो रे लोल,

चकला-काबर ने आँख बतावतो
थनक-थनक थनकारे मोरलो नचावतो,
कदी करतो ना कोईनी ऐ चाडी[5] रे लोल।
मारा खेतरमां उभो एक चाड़ियो रे लोल,

ठंडी, वरसात होय तोय नथीं कंपतो,
रात-दिन जागतो जरी नथी जंपतो
रखेवाल छे, नथी ऐ तो दाड़ियो रे लोल।
मारा खेतरमां उभो एक चाड़ियो रे लोल,

[1]काग-भगौड़ा [2]मोटा [3]हवा के [4]कौआ [5]चुगली

सबका इस्तेमाल करते हुए काग-भगौड़ा तैयार किया गया और बैंगन के खेत में स्थापित कर दिया गया।

इस पूरी कवायद में बच्चों ने सामग्री खोजी और काग-भगौड़ा बनाया। इसमें उन्हें बहुत मज़ा आया और साथ ही बहुत कुछ सहज रूप से सीखा भी। शिक्षक भी काफी उत्साही और नवाचारी किस्म के हैं। उन्होंने बच्चों से पूछा कि वे अपने-अपने खेत में काग-भगौड़ा कैसे बनाते हैं। इस एक सवाल पर बच्चे टूट पड़े। अब तो उनके अपने अनुभव सुनाने की बारी थी। किसी ने बताया कि मटकी और फटे-पुराने कपड़ों से, तो किसी ने कहा कि घास और पत्तों से बनाते हैं। एक बच्चे ने हिम्मत जुटाकर बताया कि उनके खेत में मरी हुई गाय की खोपड़ी से काग-भगौड़ा बनाया। फिर शिक्षक और बच्चे भाषा के पीरियड में खेत में जाकर काग-भगौड़े के आस-पास जमा हो गए। कविता को गाया गया। काग-भगौड़े की मौजूदगी में गाई गई यह कविता बच्चों के ज़ेहन में हमेशा बनी रहेगी।

आओ बरसात को मापें

यहाँ बरसात काफी होती है तो सोचा कि बरसात को हम शिक्षण का हिस्सा कैसे बना सकते हैं।

इस बारे में प्रवीण कुमार नामक शिक्षक के साथ चर्चा हुई। मैंने पूछा कि क्या कोई तरीका है जिससे हम बरसात को माप सकें? प्रवीण ने बताया, "वर्षामापी होता तो हम बरसात के पानी को माप सकते थे।" मैंने कहा, "अगर हम खुद ही वर्षामापी बना लें तो?" प्रवीण कुमार को भरोसा ही नहीं हुआ। उसे लगा मैं मज़ाक कर रहा हूँ।

हमने एक बरतन खोजना शुरू किया जो ऊपर से नीचे तक एक जैसा हो। यानी कि बरतन ऐसा हो जो पेंदे से लेकर सिर तक सपाट हो। वैसे भेंसधरा आश्रमशाला में बीकर तो था मगर थोड़ा बड़ा बरतन चाहिए था। साथ ही जो गिरने पर टूटे नहीं और उसमें ज़्यादा पानी समा सके। जल्द ही हमारी समस्या का समाधान हो गया। हमें तेल का एक खाली पीपा मिल गया। पीपे की खासियत यह होती है कि यह ऊपर से नीचे तक एक जैसा होता है। जितना बड़ा इसका पेंदा, उतना ही इसका खुला मुँह। पीपे के ऊपर के ढक्कननुमा हिस्से को काट लिया गया और बन गया वर्षामापी। प्रवीण ने थोड़ा सकुचाते हुए सवाल किया, "आखिर वर्षामापी का सिद्धान्त क्या है? क्या यह सही तरीका है?" इस पर चर्चा हुई कि बरसात को मापने से हमारा आशय क्या है।

मगर पीपे में पानी को मापा कैसे जाएगा? पहले सोचा कि पीपे पर स्केल के निशान लगा दिए जाएँ। मगर फिर एक आसान तरीका खोज लिया। एक स्केल लेंगे और उससे पानी के स्तर को माप लेंगे।

इस पर भी चर्चा हुई कि हम स्केल का इस्तेमाल कैसे करें। स्केल से मापने के दौरान हर किसी बच्चे को लग रहा था कि तरीके में कुछ-न-कुछ गलती हो रही है। चर्चा में यह बात निकलकर आई कि ऐसा करते हैं कि स्केल को सीधे ही डिब्बे में पेंदे तक डालते हैं और निकालकर उस पर पानी के निशान को देख लिया जाए। यह तरीका कारगर साबित हुआ। मगर इसमें भी काफी सतर्कता बरती गई।

आश्रमशाला के मैदान में एकदम खुले में पीपे को रख दिया गया। बारिश के बाद बच्चों और शिक्षकों ने मिलकर पीपे में इकट्ठे हुए पानी को मापा। यह प्रयोग कई दिनों तक चला। पीपे के पानी को मापकर उसे खाली कर फिर उसी जगह पर रख देते। हर दिन जो आँकड़े आते उन्हें आश्रमशाला के एक ब्लैक बोर्ड पर लिख दिया जाता। दरअसल, यह ब्लैक बोर्ड नोटिस

वर्षामापी से मिली बारिश की मात्रा	
दिनांक	**बरसात सेंटीमीटर में**
1 अगस्त	8 सेंटीमीटर
2 अगस्त	5.5 सेंटीमीटर
3 अगस्त	5.2 सेंटीमीटर
4 अगस्त	3.2 सेंटीमीटर
5 अगस्त	11.0 सेंटीमीटर
12 अगस्त	1.4 सेंटीमीटर
18 अगस्त	5.0 सेंटीमीटर
19 अगस्त	3.1 सेंटीमीटर
20 अगस्त	5.1 सेंटीमीटर
30 अगस्त	11.5 सेंटीमीटर
31 अगस्त	6.4 सेंटीमीटर
1 सितम्बर	1.6 सेंटीमीटर
3 सितम्बर	4.0 सेंटीमीटर
4 सितम्बर	0.9 सेंटीमीटर
5 सितम्बर	0.7 सेंटीमीटर
6 सितम्बर	1.8 सेंटीमीटर
7 सितम्बर	1.5 सेंटीमीटर
8 सितम्बर	13.4 सेंटीमीटर
9 सितम्बर	7.6 सेंटीमीटर
10 सितम्बर	1.7 सेंटीमीटर

बोर्ड के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।

हरेक कक्षा के बच्चों का ध्यान इन आँकड़ों की ओर जाता। अब वे अक्सर आपस में बात करते कि कब कितनी बरसात हुई। इतना ही नहीं, इस प्रक्रिया में अधिकांश बच्चों ने मिलीमीटर और सेंटीमीटर को समझा। कक्षा छठी और सातवीं के कई सारे बच्चों को यह पता नहीं था कि एक सेंटीमीटर में कितने मिलीमीटर होते हैं। मगर बरसात के पानी को मापते वक्त स्केल के इस्तेमाल के दौरान वे यह सब कुछ सीख रहे थे।

इन आँकड़ों के विश्लेषण के दौरान गणित शिक्षण का भी अभ्यास हुआ। आँकड़ों को बढ़ते क्रम में लिखने को कहा गया। किस तारीख को सबसे ज़्यादा बरसात हुई, कब सबसे कम हुई? जब ज़्यादा बरसात हुई तो क्या-क्या हुआ?

आश्रमशाला के पास नदी बहती है। जब 5 अगस्त और 30 अगस्त को 11 और 11.5 सेंटीमीटर बरसात हुई थी तो आश्रमशाला को दूसरी ओर से जोड़ने वाली पुलिया पर पानी आ गया था। अगली बार जब 8 सितम्बर को पुलिया पर पानी आया तो उन्होंने अनुमान लगाया कि पानी पिछली बार के बराबर या उससे ज़्यादा गिरा होगा। और हकीकत में हुआ ऐसा ही। जब डिब्बे में पानी मापा तो माप निकला 13.4 सेंटीमीटर।

इस प्रक्रिया को हमने अगस्त में शुरू किया था परन्तु बीच-बीच में कुछ छूटा भी है। अगस्त के आखिर में आश्रमशालाओं में छुट्टियाँ शुरू हो

जाती हैं। 10 सितम्बर के बाद बरसात का मापन नहीं किया जा सका। मगर इस प्रक्रिया से बच्चों और शिक्षकों में एक आत्मविश्वास पैदा हुआ।

जंगल और शिक्षा

हमारी पाठ्य पुस्तकों का एक अच्छा-खासा हिस्सा जीवशास्त्र से सम्बन्धित होता है। मगर देखने में यह आता है कि पाठ्यक्रम कुछ इस तरह का होता है कि बच्चों को अपने परिवेश के जीवशास्त्र का अध्ययन करने के अवसर नहीं मिल पाते। यों बच्चे और शिक्षक जंगल, नदी-नालों में काफी घूमते हैं, कई दफे बच्चों को भ्रमण पर भी ले जाया जाता है। मगर आम तौर पर ऐसा नहीं होता कि उस क्षेत्र में उगने वाली वनस्पतियों के अध्ययन की कोई योजना बनाएँ।

वनस्पति विज्ञान से जुड़े एक अध्याय का अध्ययन किया जा रहा था। उसमें एक कथन था कि जिन पौधों में मूसला जड़ (tap root) होती है उनकी पत्तियों में जाली विन्यास (reticulate venation) पाया जाता है। सवाल आया कि आखिर यह कैसे पता चला होगा कि मूसला जड़ वाले पौधों की पत्तियों में जाली विन्यास होता है। ऐसी और भी बातें थीं। इस मामले में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की पाठ्य पुस्तक, बाल वैज्ञानिक ने हमें रोशनी दिखाई। बाल वैज्ञानिक का ढाँचा इस पर टिका हुआ है कि बच्चे खुद-ब-खुद छानबीन करें। हमने यहाँ पर इसी तर्ज़ पर कुछ अध्यायों की योजना बनाई।

बच्चों के साथ जड़ और पत्ती, पुष्प और फल तथा जन्तुओं की दुनिया वाले अध्याय किए गए। इसके पहले हमने शिक्षक साथियों के साथ कार्यशालाएँ कीं। नतीजे काफी उत्साहवर्धक रहे। तरीका यह अपनाया कि वे खुद करके देखें।

अब तो आश्रमशालाओं में ऐसे अध्याय पढ़ाने का ढंग ही बदल गया। इस बदलाव के दौरान मैंने आश्रमशाला में जो देखा उसका आँखों देखा

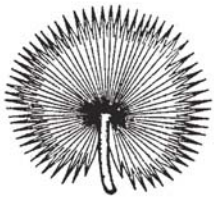

विवरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

बच्चे अपने आस-पास के इलाके में टोलियों में निकल चुके हैं। वे पत्तियों को ध्यान से देख रहे हैं। ... अरे ये तो जाली विन्यास और ये समान्तर विन्यास। अरे,... इसका तो नाम ही नहीं पता। चलो, सर से पूछते हैं। सर, "ऊं हूँ... अरे इसका नाम तो मुझे भी पता नहीं। चलो, खेत में काम करने वाले से पूछते हैं।" जब नाम पता नहीं चल पाया तो बच्चों से कहा गया कि वे उसको अपनी तरफ से कोई नाम दे दें। ऐसे कितने ही पौधे थे जिनके नाम मालूम नहीं थे मगर बच्चे उनकी पत्तियों और जड़ों के गुणों से वाकिफ हो चुके थे। बच्चों ने आश्रमशाला परिसर की एक-एक वनस्पति छान मारी। बच्चों के पास ढेरों सवाल और समस्याएँ थीं। मसलन, पौधों में काँटे क्यों होते हैं? जब पत्तियाँ नई-नई होती हैं तो उनका रंग लाल क्यों होता है? कुछ पौधों की पत्तियाँ कटी-फटी क्यों होती हैं?

अब तक बच्चों और शिक्षक को लगता था कि इन सवालों के जवाब पाठ्य पुस्तकों के अलावा अन्य किताबों में मिल जाएँगे। मगर अब उनको अन्य किताबों की सीमाएँ भी समझ में आने लगी थीं।

खासकर, जीव विज्ञान में ऐसा कुछ ज़्यादा ही होता है कि जो जीव जैसा किताब में बनाया गया है वैसा हकीकत में नहीं दिखता। यही समस्या हमें जड़ों को पहचानने में आई। आम तौर पर समान्तर विन्यास वाली पत्तियाँ लम्बी होती हैं। और यह बात दिमाग में घर कर जाती है कि लम्बी पत्तियों में समान्तर विन्यास होता है, जो सब पौधों/पत्तों के लिए सही नहीं है। कई दफे जब तालिका में जानकारी भरी जाती तो गलती हो जाती। यहाँ

शिक्षक की भूमिका काफी अहम हो जाती है। शिक्षिका फिर से बच्चों से कहती कि ज़रा एक बार फिर से देखो।

इस अध्याय का आनन्द इस बात में है कि बच्चे जड़, पत्ती और बीज के आपसी रिश्ते को समझ सकें।

जड़ और पत्ती वाला पाठ कक्षा में तो पूरा हो गया, मगर असल में तो बच्चों के लिए यह शुरुआत लगती है। अब बच्चे जब भी बाहर घूमते हैं वे पत्ती को तोड़कर एक प्रकार की पज़ल जैसी गतिविधि करते रहते हैं। जैसे एक बच्चे ने दूसरे को पत्ती बताई। और दूसरा बच्चा कहेगा - समान्तर विन्यास। एक ने जड़ दिखाई। दूसरा बच्चा कहेगा - मूसला। बच्चों की ज़िन्दगी में यह बातें धीरे-धीरे घुल-मिल चुकी हैं।

फूल से फल तक का सफरनामा

अमूमन स्कूली विज्ञान में फूल और फल की अवधारणा तो होती ही है। इस विषय को पढ़ाने के दौरान यहाँ उगाई गई सब्ज़ियों के फूलों का भरपूर इस्तेमाल किया गया। फूल की संरचना समझने के लिए बेशरम के फूल के साथ ही बैंगन के फूल खेत में से तोड़कर लाए गए। फूलों को एकत्र करने के दौरान जंगली फूलों के अलावा खेत में सब्ज़ियों के फूलों को तोड़कर उनका समूहीकरण किया गया।

फूल से फल तक के सफरनामे में खेत में एकलिंगी फूलों के साथ कई सारे प्रयोग किए गए। गिलकी, लौकी और खीरा की बेलों में किस फूल से फल बनेगा, इस अवधारणा को अच्छे से समझा गया। विभिन्न फूलों के परागकणों को सूक्ष्मदर्शी में देखा गया। किस फूल से फल बनेगा इसको समझने के लिए प्रयोग सेट किए गए। नर और मादा फूलों के साथ रंगीन धागे बाँधे गए और फिर कुछ दिनों के बाद देखा गया कि किस फूल से

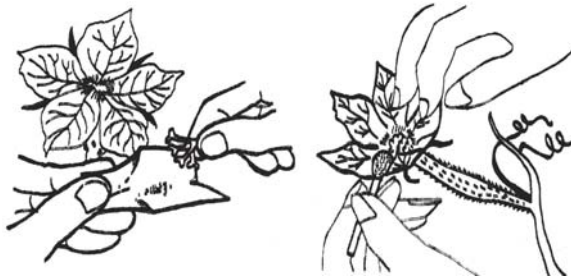

फल बनता है। साथ ही इसे जाँचने के लिए भी एक प्रयोग किया गया कि फल बनने में नर फूल की क्या भूमिका हो सकती है।

इस पूरी कवायद में लक्ष्य रखा गया कि बच्चे इतने सक्षम बन जाएँ कि वे फूल को खोलने में दक्ष हो जाएँ और वे किसी भी फूल को खोलकर उसका विधिवत अध्ययन कर सकें।

खेती बनाम विज्ञान और गणित की शिक्षा

अधिकांश आश्रमशालाओं में इतनी ज़मीन है कि वहाँ कुछ सब्ज़ी-भाजी आदि उगाई जा सके। वैसे हरेक आश्रमशाला के कुछ हिस्से में फूलदार और सजावटी पौधे लगाए जाते हैं। यह कार्य अमूमन बच्चों से करवाया जाता है। आश्रमशाला में रहने वाले बच्चों को रोज़ाना सुबह-शाम सफाई और पानी देने का कार्य करना होता है। गांधीजी की बुनियादी शिक्षा का एक आयाम यह है कि बच्चों को अपने हाथों से काम करने के अवसर दिए जाएँ। आश्रमशालाओं में अधिकांश कार्य बच्चों से करवाए जाते हैं, मगर विडम्बना की बात यह है कि इन कामों को शिक्षणशास्त्र से जोड़ने की कोशिशें कम ही हुई हैं। बच्चे महज़ काम करते रहते हैं। और जो कार्य बच्चे करते हैं, न तो उस कार्य को और न ही बच्चों को सम्मान मिलता है।

भेंसधरा आश्रमशाला में खेती की ज़मीन काफी है। यहाँ सब्ज़ियों की खेती की जाती है। जब सब्ज़ियाँ पैदा होती हैं तो उनका इस्तेमाल बच्चों और शिक्षकों के लिए पकाए जा रहे भोजन में किया जाता है। अगर सब्ज़ियाँ ज़्यादा हों तो बाज़ार में बेच दी जाती हैं और बदले में दूसरी खाने की सामग्री खरीद ली जाती है।

भेंसधरा में खेती के कार्य को गणित और विज्ञान शिक्षण से जोड़ने का

प्रयास किया गया। पूरे मौसम में कितनी सब्ज़ियाँ हुईं, कितनी आश्रमशाला में खपत हुई और कितनी बेची गईं इसका सारा गणित बच्चे ही करते हैं।

ये कुछ अनुभव हैं। पर ये हौसला देते हैं कि अगर इच्छाशक्ति हो तो विपरीत परिस्थितियों में भी कुछ सकारात्मक काम किया जा सकता है। इन अनुभवों की सार्थकता इसी बात में है कि और लोग इनसे प्रेरित हो पाएँ।

के.आर. शर्माः जशोदा ट्रस्ट, धरमपुर (गुजरात) में स्कूली शिक्षण पर काम कर रहे हैं। लेखन में रुचि।

सम्पादन सहयोगः राजेश उत्साही।